International Journal of Research Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

भारतीय संस्कृति में समन्वयवाद

डॉ. कृश्णमोहन पाण्डेय

असिस्टेण्ट प्रोफेसर स.ध. आ. म. डोहगी, बंगाणा, ऊना, हि. प्र. 174307

मो. 9736977002, मउंपस. चाउचंदकमल/हउंपसण्बवउ

.....

भारतीय संस्कृति विश्वभर की संस्कृतियों मैं समन्वयवाद की दृष्टि से सभी संस्कृतियों की जनक हैं। संस्कृति का आधार धर्म होता है और धर्म का मूल वेद है 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वेदों में मनुष्य के धर्म को जितने सुंदर और सरल शब्दों में उपस्थापित किया गया है वैसा विश्वभर के किसी भी साहित्य में दुर्लभ है। ऋग्वेद के अनेक मंत्र समन्वयवाद के पोषक हैं जो कालांतर में भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ बने हैं। वैदिक ऋषि मानवीय सभ्यता के पोषण के काल में सब को सचेत करता है कि हे मनुष्यों तुम्हें साथ–साथ चलना है सबके साथ समान व्यवहार करना है सब के अनुकूल वाणी बोलना है सब के अनुकूल आचरण करना है कोई ऐसा आचरण नहीं करना जिससे किसी भी व्यक्ति को तनिक भी कठिनाई या समस्या या दुःख उत्पन्न हो, इस सार्वभौमिक विचारधारा का पोषण करने वाले भारतीय संस्कृति की आत्मा कहे जाने वाले वेद विश्वभर की संस्कृतियों के लिए धरोहर हैं और सभी संस्कृतियों की आत्मा भी हैं। इतना सरल और सहज धर्म का स्वरूप किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं होता है वैदिक ऋषि जिन रहस्य का उद्घाटन कर रहे थे वही रहस्य और अधिक सरल शब्दों में रामायण महाभारत पुराण और उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य में व्याख्यायित और विस्तृत हुआ है। इसी का अगला परिणाम पाली प्राकृत अपभ्रंश ब्रज मागधी अवधी खड़ी बोली हिंदी आदि आदि भाषाओं ने उसे ही आधार बनाकर अपने अपने काल में संस्कृतियों का विस्तार किया है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृति का मूल आधार है षुनि चैव ष्वपाके च पंडिताः समदर्षिनः। यह सिद्धांत वाक्य इसी भाषा और इसी संस्कृति का है अर्थात् जो जैसा है उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए वैदिक ऋषि संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् देवा भागं यथा

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

पूर्वे संजानाना उपासते। समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासती'। ऋशि पुनः कहता है कि 'समानो मंत्र समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेशाम्। समानमन्त्रमभिमन्त्रये समानेन वो हविशा जुहोमि। भारतीयता की पहचान इसी बात से है कि भारत के लोग वसुधैव कुटुंबकम् की बात करते हैं भारत के लोग यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् की बात करते हैं। भारतीयता की पहचान इन दो शक्तियों के बिना अधूरी लगती है किसी संस्कृतकवि ने क्या खूब कहा है कि भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'। संस्कृत भारतीयता की पहचान दिलाने में सबसे आगे है। भारत का यह विषय और यह भाषा विश्वभर की भाषाओं में सबसे ऊपर अपना स्थान रखती है। यह भाषा हमेशा सभी के कल्याण और उत्थान की बात करती है। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्। यह उदात्त भावना दुनिया की किसी भी साहित्य में नहीं मिलता है किंतु भारत का यह सूक्ति वाक्य हर गोष्ठी और सम्मेलन में उच्चरित किया जाता है। यह उक्ति सभी को सामंजस्य स्थापित करने पर विवश करती है निश्चित रूप से इसका पोषण करने पर हमें गर्व होता है। आज के आधुनिक एवं उपभोक्तावादी युग में यद्यपि ये उदात्त भावनाएं बहुत कठिन हैं, हमें किसी और के बारे में सोचना बहुत कठिन लगता है व्यावहारिक नहीं लगता, किंतु सिद्धांत तो यही कहते हैं कि हमें परस्पर समभाव रखना चाहिए जो हमारे साथ रह रहे हैं उनका भी हमें ख्याल रखना चाहिए कौन छोटा है कौन बड़ा है किसके साथ आदर भाव किसके साथ स्नेह का भाव किसके साथ अनुशासन का भाव रखना है यह भी हमारे नीतिशास्त्र हमें निरंतर अनुशासित करते हैं इसलिए भारतीय संस्कृति में इस तरह की भावनाओं पर अधिक बल दिया गया है इन पर अनुसंधान करना हमारी महती जिम्मेदारी है।

यस्यालीयत शल्कसीम्निजलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलम्।

दंष्ट्रायां धरणी, नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी।

क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो,

ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मै चिदस्मै नमः।।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

भगवान विश्णु के ये दशावतार विभिन्न कालों की संस्कृतियों के परिचायक हैं तथा पृथ्वी पर प्राणी की उत्पत्ति के सिद्धान्तों के जन्मदाता हैं। समय–समय पर इन अवतारों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का वह काल, जिसे हम वैदिक काल या वैदिक संस्कृति कहते हैं, जिसकी ओर समस्त विश्व नतमस्तक होता है, निःसन्देह हमें उस परम्परा का पोषक होने पर गर्व है। आप इतिहास पर दृष्टि डालें, तो साफ नजर आता है कि कितने ही अवांछनीय तत्त्वों ने इस अमर संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न किया, मगर वे सब इस विशाल चट्टान के सामने धराशायी हुए हैं। ईश्वरोद्भूत यह संस्कृति जब कभी भी संकट में फँसी है, तो खुद इसके उत्पादक ने अवतार लिये हैं और अपसंस्कृतियों, बुराईयों एवं अवांछनीय तत्त्वों को नष्ट किया है, जैसा कि गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

भारतीय संस्कृति 'अतिथि देवो भव' की पोषिका है। हर काल में उसके अनुकरण की चर्चा की जायेगी। हमें ऐसी परम्परा का पोषण करना है। हमारा गौरवमय इतिहास यह बताता है कि न जाने कितने आततायी हम से हमारा सब कुछ छीनने आये और हम पर अत्याचार भी किया, हमने सबकुछ सहा है। हमारा वह त्याग ही है, जो हमें चिरंजीवी बनाये रखे है और इसलिए हमारा अतीत सम्पूर्ण विश्व स्वर्णाक्षरों में लिखता है। विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। विविधताओं को समेटना भारतीयता की आत्मा है। विश्व के आराध्य भगवान् शंकर एवं उनका पूरा परिवार विविधताओं का समूह है। उनके परिवार में सब एक–दूसरे के भक्षक हैं, जैसे–सर्प, चूहा और मोर, किन्तु ये सब एक ही छत के नीचे परस्पर समन्वयी भावना से रहते हुए हमें ऐक्य का उपदेश दे रहे हैं। स्वयं भगवान् शिव समन्वय की साक्षात् मूर्ति हैं– एक तरफ अमृत हैं, तो दूसरी तरफ विष। दुनिया अमृत के लिए लालायित रहती है, किन्तु शिव विषपान करते हैं, फिर भी उन्हें अमरत्व प्राप्त है। यहाँ स्पष्ट तात्पर्य है कि जो त्यागता है, उसे सब कुछ मिलता है। शिव कलाओं के अद्भुत कलाकार हैं। उनका प्रत्येक कार्य प्रायः अमंगलकारी दिखता है, जैसे– श्मशान में निवास, भस्मलेपन, मृगछाल आदि, फिर भी उनके त्याग ने हमारी संस्कृति को अद्भुत स्वरूप दे रखा है।

प्राचीन काल से हमारी संस्कृति एकेश्वरवाद और बहुदेववाद की चर्चा करती आ रही है। यही चिन्तन भारतीय संस्कृति एवं अन्य संस्कृतियों के उद्भव का कारण है। जिस प्रकार एक ही वृक्ष की अनेक शाखाएँ होती हैं, अनेक टहनियाँ और अनेक पत्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति विशाल वृक्ष की जड़ और तना है तथा उसकी शाखा प्रशाखा अन्य संस्कृतियाँ हैं। ऐसे में यदि जड़ और तने को काट दें, तो सारी शाखाएँ धराशायी हो जायेंगी,

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

तात्पर्य यह कि भारतीय संस्कृति को कहीं से भी अलग कर दें, तो दुनिया भर की संस्कृतियों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। संक्षेप में कहें, तो भारतीय संस्कृति ईश्वर है और दुनिया भर की संस्कृतियाँ देवता। इस कल्पना में ईश्वर सब का पोषक है, देवता उसी से उत्पन्न होते हैं, उसी ईश्वर की सब उपासना करते हैं। इस प्रकार अन्य सभी संस्कृतियाँ उसी मूल भारतीय संस्कृति की शाखाएँ है, जिनका सह–अस्तित्व अपने जड़ और तने के साथ है। अन्य संस्कृतियों की उत्पत्ति का यही सिद्धान्त है कि जहाँ जिस देवता की अपेक्षा होती है, वहाँ उसकी उपासना की जाती है।

एक और उदाहरण से भारतीय संस्कृति का स्वरूप समझा जा सकता है। जिस प्रकार सभी प्रकार के जलों का स्रोत समुद्र है, उसी प्रकार सभी संस्कृतियों का स्रोत भारतीय संस्कृति है। जिस प्रकार समुद्र के जल को ईश्वर का एक प्रतिनिधि अपने स्रोत से वाष्प रूप में लेता है और जल रूप में अन्यान्य स्थलों पर आप्लावित करता है, जल पुनः सरकते–सरकते उसी समुद्र में जा मिलते हैं, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति की समरसता को भिन्न–भिन्न काल में ईश्वर के प्रतिनिधियों ने अपने स्रोत से इकट्ठा करके विभिन्न समुदायों को समर्पित किया है। उन संस्कृतियों का पुनर्मिलन इसी अमर संस्कृति से होता रहता है। कल्पना करें कि जिस दिन समुद्र का जल सूख जायेगा, उस दिन समस्त नदियों का जल भी सूख जायेगा, जिस दिन भारतीय संस्कृति समाप्त हो जायेगी, उस दिन सारा विश्व बिना जल के मछली की तरह तड़पकर मर जायेगा।

भारतीय संस्कृति का जीवन–दर्शन कहता है कि जो स्वरूप आज विश्व का है, वही उसके समाज का है और वही स्वरूप व्यक्ति का है। व्यक्ति को देखकर उसके परिवार, समाज और राष्ट्र की कल्पना की जा सकती है। हमारा धर्म सिखाता है कि जिससे पूरे राष्ट्र का उत्थान न हो, उसे त्याग देना चाहिए। धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकं विसृष्टमेव च। तात्पर्य यह है कि जिस धर्म का लक्ष्य राष्ट्र और विश्व के उत्थान के लिए न हो, उसे अस्वीकार कर देना चाहिए। यही भारतीय मनीषा का सन्देश है। हमारी संस्कृति विरोधी चरित्र, संस्कारों एवं उपासनाओं को आत्मसात् करते हुए उन सब का सम्मान करती है तथा सदा सर्वदा एक–दूसरे से जोड़ने में विश्वास करती है। इसी में उसकी अस्मिता सुरक्षित है और समन्वय का मार्ग प्रशस्त करती है। समन्वय का स्वरूप पुरूषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परस्पर समन्वयी भावना से एक–दूसरे के पोषक हैं, तभी ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। हमारी समन्वयवादी संस्कृति के मूलाधार तीन काण्ड हैं, जो भारतीय मनीषा के उदात्त स्वरूप हैं– ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड। तीनों में समन्वय ही ऐक्य का सूत्र है। तात्पर्य यह है कि हमारा ज्ञान भिन्न–भिन्न हो सकता है किन्तु यह सब अलग–अलग होते हुए भी एक–दूसरे के पोषक हैं। ज्ञान कर्म का पोषण करेगा, कर्म ज्ञान का पोषण करेगा और इन दोनों की परम गति उपासना

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

है। उपासना में सर्वदा ऐक्य की कल्पना होती है। पण्डितराज जन्नाथ ने 'गंगालहरी' में लिखा है–

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना,

गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।

प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशा,

सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।

यहाँ स्पष्ट है कि हे प्रभु! हम जो कुछ करते हैं, वह सब तुम्हारी पूजा है, सभी वार्त्ताएँ तुम्हारा जप हैं, चलना–फिरना तुम्हारी प्रदक्षिणा है, हमारा शयन ध्यान है, प्रणाम है। यह सिद्धान्त वस्तुतः जगत् में ईश्वर को व्याप्त मानने का है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) ये सारी कल्पनाएँ बस इसीलिए हैं कि जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत् का उत्पादयिता, उत्पादक और उत्पाद्य एक ही ईष्वर है, उसी प्रकार सभी संस्कृतियों की जननी भारतीय संस्कृति है। निष्कर्षतः सामाजिक एकता, समरसता और विश्वबन्धुत्व आदि भावों की पोषिका भारतीय संस्कृति निःसन्देह विश्व द्वारा अनुकरणीय है। विचार करें कि जब हमारा ऋषि यह कल्पना करता है कि सम्पूर्ण विश्व एक घोसला है 'यत्रविष्वं भवत्येकनीडम्,' 'उदारचरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्'। जहाँ केवल मानव मात्र के कल्याण की भावना दिखती है, जहाँ सभी प्राणियों के सुख की कल्पना हो, ऐसी दुनिया भर में क्या कोई संस्कृति है? निःसन्देह सब की दृष्टि ऐसे ऐक्य का अनुकरण करने वाली संस्कृति पर जाती है जो हमारी गौरवमयी परम्परा है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।